B.A-Sem-III

* *

जैन दर्शन के अनुसार जीव स्वभाव से मुक्त है किंतु अनादि अज्ञान या वासना के कारण कर्म बंधन में फंसा हुआ है। बंध और मोक्ष दोनों ही आत्मा की पर्याय है- मोक्ष आत्मा की शुद्ध पर्याय है और बंध अशुद्ध पर्याय है। आत्मा को अपने मूल स्वभाव में आने में जो बाधा उत्पन्न है, वह बंध है। इसके विपरीत सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय मोक्ष है। मोक्ष बंध का प्रतिपक्ष है। अन्य शब्दों में कर्म पुद्गल का जीव को जकड़ लेना बंध है और जीव का कर्म पुद्गलों से सर्वथा छूट जाना मोक्ष है।

राग और द्वेष कर्म बंध के मूल बताए गए हैं। किसी भी पदार्थ या प्राणी के प्रति राग-द्वेषात्मक विकल्पों का होना बंधन है। उदाहरणार्थ, प्रिय शब्द सुनकर यदि किसी व्यक्ति के मन में राग उत्पन्न होता है तो वह बंधन है। यदि अप्रिय शब्द सुनकर मन में द्वेष उत्पन्न होता है तो वह भी बंधन है। परंतु निंदा या प्रशंसा सुनकर भी यदि मन समभाव में रहता है, मध्यस्थ रहता है, तो उस स्थिति में न राग का बंधन है, न द्वेष का बंधन है।

बंधन शुभ व अशुभ दोनों प्रकार का हो सकता है, किंतु दोनों ही मोक्ष प्राप्ति में समान रूप से बाधक हैं।

B.A - Sem-III

* *

अध्यात्म कहता है कि केवल नरक में जाना ही बंधन नहीं है, स्वर्ग में जाना भी एक प्रकार का बंधन ही है। किसी अपराधी के पैरों में सोने की बेड़ी डाल दी जाये अथवा लोहे की, दोनों में विवेक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं। बंधन दोनों जगह है। पाप लोहे की बेड़ी है तो पुण्य सोने की बेड़ी है। दोनों का काम एक ही है। यदि दोनों में अन्तर है तो केवल इतना ही है कि एक प्रतिकूल वेदन है और दूसरा अनुकूल वेदना है। एक दुःख रूप है तो दूसरा क्षणिक सुख रूप है। मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार पाप छोड़ा जाता है, उसी प्रकार पुण्य को छोड़ा जाना अनिवार्य है।

सिद्धान्त की दृष्टि से जैन दर्शन में जीवन विकास की चौदह भूमिकाएं मानी गई हैं जिन्हें शास्त्रीय भाषा में गुणस्थान कहा जाता है। उनमें प्रथम गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक के सभी जीव कर्म बंधन से बंधे हुए हैं। चौदहवें गुणस्थान वाला जीव ही कर्मों से मुक्त होकर सिद्धत्व को प्राप्त करता है। उससे पहले के गुणस्थानों तक कम या अधिक मात्रा में कर्म बंधन रहता ही है।